इकाई 5 रंगमंच (नाट्यमण्डप): निर्माण विधि(भाग तीन)

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 रंगमंच (नाट्यमण्डप) निर्माण विधि

- 5.3.1 काष्ठ विधि
- 5.3.2 भित्ति कर्म
- 5.3.3 सुधाकर्म
- 5.3.4 नेपथ्यगृह
- 5.3.5 प्रेक्षकों की उपवेशन व्यवस्था
- 5.3.6 ध्वनि एवं प्रकाश व्यवस्था
- 5.3.7 भरत के अनुसार विकृष्ट मध्य नाट्यमण्डप की सर्वश्रेष्ठता
- 5.3.8 रंगमंच के विषय में अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य
  - 5.3.8.1 यवनिका
  - 5.3.8.2 अन्य ग्रन्थों में नाट्यमण्डपविधि
  - 5.3.8.3 ग्रीक परम्परा में नाट्यगृह

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.7 बोध प्रश्न

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आपको :

- रंगमंच के सुविधाओं का ज्ञान हो सकेगा।
- रंगमंच विविध पक्षों का उद्घाटन हो सकेगा।
- रंगमंचीय अपेक्षित विषय उभरकर सामने आयेंगे।
- रंगमंच के साज–सज्जा के साथ अन्य नाट्यमण्डप परम्परा का ज्ञान हो सकेगा।
- रंगमंच की व्यवस्था का समुचित ज्ञान हो सकेगा।

5.2 प्रस्तावना

रंगमंच (नाट्यमण्डप) नाट्यशास्त्र का महत्त्वपूर्ण भाग है। यह वही स्थल है जहाँ नाटक का प्रयोग किया जाता है। यह प्रयोग उसके समुचित व्यवस्था से ही सफल एवं रूचिकर होता है। इसलिए 'नाट्यशास्त्र' में काष्ठ विधि, भित्तिकर्म, सुधाकर्म, प्रवेश–निकास, नेपथ्य, प्रकाश और ध्वनि की व्यवस्था का वर्णन किया गया है जिसका वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

5.3 रंगमंच (नाट्यमण्डप) निर्माण विधि

रंगमंच के निर्माण में उसके अनेक कर्मों की सावधानी अपेक्षित होती है जिससे अभिनयकर्ता और दर्शक को आत्ममुग्धता की अनुभूति होती रहे। साथ ही किसी को असुविधा न हो उसके लिए ध्वनि, प्रकाश नेपत्थ्य, काष्ठ विधि आदि का वर्णन नाट्यशास्त्र में किया गया है। जो इस प्रकार है–

5.3.1 काष्ठ विधि

भारतीय परम्परा में बहुत ही प्राचीन समय से दैनन्दिन जीवन को सहज सम्पादित करने के लिए लकड़ी (काष्ठ) इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। नाट्यमण्डप या रंगमंच के निर्माण में भी काष्ठ का अनेक रूपों में प्रयोग किया जाता है। नाट्यमण्डप में काष्ठ प्रयोग के सम्बन्ध में यह सबसे बड़ी बात सामने आती है कि यह सहज ही जंगलों से प्राप्त हो जाती है। जिसे आवश्यकतानुसार नाट्यमण्डप के प्रयोग में लाया जाता है। नाट्यमण्डप निर्माण में अनेक स्थलों पर काष्ठ का प्रयोग किया जाता है, जिसमें नागदन्त, षड्दारुक इत्यादि महत्त्वपूर्ण हैं।

5.3.2 भित्ति कर्म

नाट्यमण्डप के भित्ति कर्म भी महत्त्वपूर्ण है। भित्ति के सम्बन्ध में या भित्ति पर अनेक कार्य किये जाते है। यथा– छोटे–छोटे वातायन, असम्मुख द्वार ईटों का प्रयोग इत्यादि। भित्तिकर्म के सम्बन्ध में आचार्य भरत ने लिखा है–

भित्ति कर्मणि निवृत्तेस्तम्भानां स्थापनं तथा। (ना.शा. 2/50)

अर्थात् नाट्यमण्डप की स्थापना करके भित्तिकर्म प्रारम्भ करें। भित्ति का निर्माण किससे होता है यह विवाद का विषय है। परन्तु एक स्थान पर दर्शकों के बैठने के लिए जो चबूतरे बनते थे उसके इष्टिका से बनाने का निर्देश नाट्यशास्त्र में मिलता है। इस प्रकार नाट्यमण्डप के भित्ति कर्म में ईट का उपयोग प्रतीत होता है। भित्ति कर्म के रूप में भित्ति को सजाना, रंगों का प्रयोग करना और आधुनिक समय में ध्वनि अवशोषक भित्ति की बात की जाती है। नाट्यशास्त्र में भित्ति कर्म के विषय में कहा गया है–

भित्तिकर्म विधिं कृत्वा भित्तिलेपं प्रदापयेत्।
सुधाकर्म बहिस्तस्य विधातव्यं प्रयत्नतः।। (ना.शा. 2/89)

अर्थात् भित्ति रचना विधि पूरा करके भित्तिका पर लेपन करना चाहिए तथा उसके बाहर प्रयत्न पूर्वक चूने से पुताई करनी चाहिए।

5.3.3 सुधाकर्म

सुधाकर्म भी भित्तिकर्म से ही सम्बन्धित है। सुधाकर्म से तात्पर्य चूना पोतना होता है लेकिन यहाँ सुधाकर्म से अभिप्राय भित्ति प्रसाधन से है। आचार्य भरत का मानना है कि नाट्यमण्डप की भित्ति अत्यन्त कलात्मक और परिष्कृत होनी चाहिए। अभिनवगुप्त के मत में भित्ति लेपन का कार्य शंख बालू और सितुहा आदि के चुड़े से होना चाहिए। नाट्यमण्डप की भित्ति के चारों ओर से परिमिष्ट तथा अत्यन्त शोभन हो जाने पर चित्र रचना का विधान होना चाहिए। चित्रकर्म में सुन्दर स्त्री–पुरुष, वृक्षों का आलिंगन्न से

युक्त लताएं तथा मानव जीवन के भोग–विलास की कोमल भावनाएं उन नाट्यमण्डप की भित्तियों पर अंकित होनी चाहिए। नाट्यमण्डप के प्रसाधन को देखकर मौर्यकाल से गुप्तकाल तक के वैभव सम्पन्न प्रसादों और विथियों में विकसित सुकुमार विलास–लीलाओं का स्मरण हो जाता है। कहने का भाव यह है कि नाट्यमण्डप की भित्ति अलंकृत एवं सुसज्जित होनी चाहिए इससे प्रेक्षक मन नाट्यअभिनय के प्रति आकर्षित होता है।

5.3.4 नेपथ्यगृह

नाट्यमण्डप के रंगशीर्ष के पीछे का भाग नेपथ्य कहलाता है। नेपथ्य का अर्थ–वेश–भूषा धारण करने का स्थान है। नाट्यशास्त्र में नेपथ्य निर्माण प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए ऐसा कहा गया है–

नेपथ्यगृहकं चैव ततः कार्यं प्रयत्नतः। (2/102)

आचार्य भरत के अनुसार नट में रामादि के व्यंजक वेश–भूषा को धारण करना नेपथ्य विधान है– रामादिव्यंजकों वेशो नटे नेपथ्यमुच्यते। इस प्रकार वेश–भूषा की रचना तथा वेश–भूषा धारण करने के स्थान को नेपथ्य कहते हैं। अन्य आचार्य के अनुसार कुशीलव के कुटुम्बीजन यानि पात्र जहाँ पर अभिनयोचित वेश–भूषा का धारण कर अभिनय के लिए तैयार होते हैं उसे नेपथ्य गृह कहते हैं–

नेपथ्यकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।

नेपथ्य रचना विधान के सम्बन्ध में आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी ने कहा है–

विद्या विस्तरतः कुर्याद दौ भागौ तत्र पश्चिमे।
नेपथ्यगृहमादिश्य पूर्वं भूयो द्विधा क्रियात्।। (नाट्यानु. 1/63)

अर्थात् वेदी की लम्बाई के विस्तार को चौड़ाई से दो हिस्से में बांट दें। इनमें जो भाग पीछे की ओर हो उसे नेपथ्यगृह बनाये। बचे हुए अगले भाग का दो भागों में बांट दें। कहने का भाव है यदि नाट्यमण्डप 64×32 हाथ के आकार का है तो नेपथ्यगृह का आकार 16×32 होगा। नेपथ्य के द्वार के सम्बध में बताया गया है कि रंगपीठ में प्रवेश के एक ही प्रकार के दो द्वार निर्मित किये जाएं तथा नेपथ्यगृह के सामने की ओर नटों के प्रवेश के लिए तीसरा द्वार और रंगमण्डप के सामने प्रेक्षकों के प्रवेश के लिए चौथा द्वार निर्मित किया जाना चाहिए। नेपथ्य में अभिनय से सम्बन्धित सभी वस्तुएं रखी जाती है यथा– अस्त–शस्त्र, विमान, रथ, वस्त्र, ध्वजा इत्यादि।

5.3.5 प्रेक्षकों की उपवेशन व्यवस्था

नाट्यमण्डप में जिस स्थान पर दर्शक बैठकर रंग (नाट्य) का आनन्द लेते हैं उस स्थल को प्रेक्षक उपवेशन कहा जाता है। जिसके सम्बन्ध में आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–

प्रेक्षकस्योपवेशाय स्थाप्येरन् पीठिकाः सुखाः।
आसन्द्यो वा न व किञ्चित् व्यक्त्वा भूमिं सविष्टराम्।

(नाट्यानुशासनम् 1/88)

अर्थात् प्रेक्षकों के बैठने के लिए सुखद पीठिकाएं स्थापित की जा सकती हैं या कुर्सियां। अथवा कुछ नहीं, केवल आसन युक्त भूमि ही बैठने के लिए उपयोग में लाई जाय। साथ यह भी कहा गया है कि प्रेक्षक भूमि अग्रभाग में ऊँची रहे और पश्च भाग में नीची रहे। ऊँची भूमि अधिक ऊँची न हो। धरातल के बन्धुर रहने पर पीछे बैठे प्रेक्षकों को कठिनाई नहीं होती है।

5.3.6 ध्वनि एवं प्रकाश व्यवस्था

नाट्यमण्डप में ध्वनि एवं प्रकाश की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसा नाट्यमण्डप का निर्माण किया जाना चाहिए जिससे दर्शक के संवाद सहज ही ग्राह्य हो जाये। जिसके लिए मध्यम प्रेक्षागृह को उपयुक्त माना गया है क्योंकि उसमें पाठ्य (संवाद) और गेय (संगीत) सुख से सुनाई देता है। साथ ही नाट्य मण्डप में ध्वनि गूजे न इसका भी नाट्यमण्डप निर्माताओं को ध्यान देना चाहिए। नाट्यमण्डप के प्रकाश व्यवस्था हेतु दीपक इत्यादि का व्यावहार किया जाना चाहिए। ऐसा अनुमान किया जाता है कि कुशाण काल की परइयाँ जो स्थान–स्थान पर खोदाई में निकली हैं कदाचित् (मिट्टी का दीपक) दीपक के काम के लिए उपयोगी रही होगी। इसी प्रकार दीपक जलाने से नाट्यमण्डप का प्रकाश व्यवस्था समुचित करना चाहिए। नाट्यमण्डप में दो द्वार की कल्पना की गयी है वह भी प्रकाश व्यवस्था के लिए आवश्यक है। आधुनिक समय में नाट्यमण्डप में ध्वनि यन्त्रों एवं विद्युत बल्वों द्वारा नाट्यमण्डप के ध्वनि एवं प्रकाश व्यवस्था को उत्तम बनाया जा सकता है।

5.3.7 भरत के अनुसार विकृष्ट मध्य नाट्यमण्डप की सर्वश्रेष्ठता

जिस स्थान पर अभिनय किया जाता है उसे नाट्यमण्डप कहते हैं। जिसके विषय में नाट्याचार्यों के मत में अनेक विषय उपस्थित किये गये हैं। उन्हीं से सम्बन्धित मध्यम् विकृष्ट नाट्यमण्डप की सभी नाट्यचार्यो ने अभिनय एवं दर्शन की दृष्टि से प्रशंसा किया है। अतः नौ या अट्ठारह प्रकार की नाट्य मण्डपों में विकृष्ट मध्यम नाट्यमण्डप श्रेष्ठ एवं उपयुक्त नाट्यमण्डप स्वीकार किया जाता है। आचार्यभरत की दृष्टि में यही नाट्यमण्डप उपादेय है। इसके सम्बन्ध में 'नाट्यशास्त्र' में कहा गया है–

प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां प्रशस्तं मध्यमं स्मृतम्।
तत्र पाठ्यं च गेयं च सुखश्राव्यतरं भवेत्।। (ना.शा. 2/12)

अर्थात् सभी प्रकार के प्रेक्षागृहों में मध्यम प्रेक्षागृह को प्रशस्त अर्थात् सर्वोत्तम कहा गया है। क्योंकि पाठ्य (संवाद) तथा गेय (संगीत) इसमें सुख से सुना जा सकता है। इसलिए आचार्य भरत ने कहा है–

प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तस्मान्मध्यममिष्यते।
यावत्पाठ्यं च गेयं च तत्र श्रव्यतरं भवेत्।। (ना.शा. 2/24)

अर्थात् इसलिए सभी प्रकार के प्रेक्षागृहों में मध्यम प्रेक्षागृह को श्रेष्ठ कहा जाता है। क्योंकि समस्त रूपकों में जो पाठ्य प्रधान नाट्य का शरीर रूप है और नाट्य का प्राण भूत उपरंजक गीत है। चकार से वाद्य आदि का ग्रहण होता है जो अधिक स्पष्ट सुनाई देता है। दूसरे चकार से दूसरा अभिनय भी दृश्य होता है यानि सुख के दिखाई देता है।

इस आदर्श नाट्यमण्डप का परिमाण 64×32 हाथ होता है। इससे बड़ा नाट्यमण्डप बनाने पर नाट्य अव्यक्त भाव का प्राप्त हो जाता है। न स्पष्ट दिखाई और न स्पष्ट

सुनाई देने के कारण अन्य बड़े नाट्यमण्डप अनुपादेय हो जाते हैं। उनका पाठ्य वेसुरा हो जाता है और दृश्य भी अदृश्य सा हो जाता है। इसलिए विकृष्ट मध्य नाट्यमण्डप आचार्य भरत को मान्य है क्योंकि यह सर्वविध से उपादेय एवं महत्त्वशील है।

5.3.8 रंगमंच के विषय में अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य

5.3.8.1 यवनिका

आचार्य भरत ने पूर्वरंग विधि में वाद्य आदि की व्यवस्था तथा कुछ गीतों का गायन यवनिका के भीतर ही निर्दिष्ट किया है। उन्होंने नृत्त तथा पाठ्य के लिए यवनिका के उठाये जाने का संकेत किया है। रंगशीर्ष में दोनों द्वारों के बीच वादक आदि के बैठने की व्यवस्था की जाती है। जिससे स्पष्ट होता है कि यवनिका रंगशीर्ष और रंगपीठ के बीच रखी जाती है। 'नाट्यशास्त्र' के पांचवें और बारहवें अध्याय में यवनिका तथा पटी शब्द का उल्लेख किया है। इस रूप में कहा गया है कि रंगमंडप पर प्रयोज्य नाट्य में कवि निबद्ध गीतों के अतरिक्त अन्य गीतों का प्रयोग मुख्य रंगभूमि पर यवनिका की ओट से करना नहीं चाहिए। परन्तु अन्य नृत्य एवं पाठ्य का प्रयोग यवनिका को हटाकर करना चाहिए। साथ ही बारहवें अध्याय में नाट्य प्रयोग के शुभारम्भ काल में ध्रुवगान के संप्रवृत्त होने पर आकर्षित होते ही नाना अर्थ और रस के आधारभूत पात्रों के प्रदेश का विधान किया गया है। इस पर की आकर्षण विधि से इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि यहाँ पर आचार्य भरत ने जिन दो श्लोकों का उल्लेख किये हैं वे भी यवनिका अथवा पटी के प्रयोग का समर्थन करते हैं। जिसके सम्बन्ध में अभिनवगुप्त ने भी कहा है कि यवनिका के अपसारण से पूर्व तन्त्री एवं मृदंग वाद्यों से युक्त आलाप का प्रयोग तो होना चाहिए। परन्तु वह मार्ग तथा रसोपेत भी होना चाहिए। मार्ग से उनका अभिप्राय रंगभूमि पर अपेक्षितगृह उद्यान आदि का रमणीय दृश्य विधान है। यवनिका और रंगभूमि पर स्थान आदि का संकेत व्यापक दृश्यविधान का अंग है। यहाँ यवनिका के अपसारण तथा नानार्थ रससंभव पात्र के प्रवेश विधान से इस बात का स्पष्ट संकेत निकलता है कि आधुनिक ड्रॉप कर्टेज की तरह इस यवनिका का भी प्रयोग मुख्य रंगभूमि पर रंगपीठ और प्रेक्षकोपवेशन के मध्य किया जाता है। कई स्थलों पर यवनिका और यमनिक शब्द का भी इस सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है।

5.3.8.2 अन्य ग्रन्थों में नाट्यमण्डपविधि

आचार्य भरत के पश्चात् अन्य ग्रन्थों में नाट्यशाला का वर्णन मिलता है, जिनमें विष्णुधर्मोत्तर पुराण का विवरण महत्वपूर्ण है। इस पुराण में दो ही प्रकार के प्रेक्षागृह बताये गये हैं– आयात तथा चतुरस्र। चतुरस्र का प्रमाण 32 हाथ तथा आयत का उससे दुगना बताया गया है। भरत का तृतीय प्रेक्षागृह त्र्यस्र संभवतः इस पुराण के रचनाकाल तक लुप्त होने लगा था। साथ ही, यह पुराण मंदिर रंगशाला से अनुबद्ध है, जिसमें त्र्यस्र नाट्यगृह बनाने की परिपाटी संभवतः न रही हो। इस सम्बन्ध में यहाँ कहा गया है–

लास्यं स्वच्छन्दतः कार्यं मण्डपे यदि वा बहिः।
नाट्यं मण्डप एवं स्थान्यमण्डपं द्विविधं भवेत।।
आयतं चतुरस्रं तु द्वात्रिंशद्धस्तसम्मितम्।
चतुरस्रं न कर्त्तव्यमायतं द्विगुणायतम्।।

हीनाधिकं न कर्त्तव्य दृष्टादृष्टशुभप्रदम्।
हीने भवति सम्मर्दो विस्तीर्णे नाट्यगेययोः।।

(विष्णुधर्मोत्तर पुराण 3/22/4–6)

अर्थात् लास्य को अपनी इच्छानुसार मण्डप के भीतर अथवा बाहर किया जा सकता है किन्तु नाट्यमण्डप के भीतर ही होता है। मण्डप दो प्रकार का होता है। आयत (लम्बा) तथा चतुरस्र (चौकोर) मण्डप बत्तीस हाथ का होता है किन्तु आयत को इसका दो गुना होना चाहिए। मण्डप को इससे कम या अधिक नहीं बनाना चाहिए। ऐसा करने पर दृष्ट तथा अदृष्ट शुभ होता है। यहाँ यह भी कहा गया है कि मण्डप के कम विस्तृत होने पर भीड़ होती है और अधिक विस्तार करने पर नाट्य गेय की अभिव्यक्ति नहीं होती हैं।

शिल्परत्न नामक ग्रन्थ में राजमहल में निर्मित होने वाली रंगशाला का वर्णन किया गया है तथा उसमें स्तूप्य या स्तूपी और अलिंद को भी बनाने का निर्देश दिया गया है, जो नाट्यशास्त्र में अनुल्लिखित है। इस ग्रन्थ में रंगशाला के 16 भाग बताये गये हैं, जिनमें से 6 मंदिर की रंगशाला में भी बनाने का निर्देश दिया गया है। शिल्परत्न के अनुसार मंदिरों में कई प्रकार के मण्डप बनाये जाने चाहिये, जिनमें से नाट्यमण्डप भी एक है।

विश्वकर्म वास्तु प्रकाश में विश्वकर्मा प्रणीत राजसदन को ही रंगशाला कहा गया है। यह राजा के प्रासाद के सम्मुख या मंत्रियों, अमात्यों के भवनों के सामने अथवा इनसे कुछ हट कर भी बनायी जाती थी। रंगशाला इस ग्रंथ में तीन प्रकार की बताई गयी है– दैव, गांधर्व तथा मानुष। इसमें तीन मुख द्वार बताये गये हैं, जिन पर प्रहरी नियुक्त रहना चाहिये। भवन के भीतर लक्ष्मी, उमा, शिव आदि देवों की मूर्तिया लगायी जाए। रंगशाला बाहर एक वापी से घिरी हो। इसी प्रकार मानसोल्लास में भी राजप्रासाद की रंगशाला वर्णित है। रंगमंच या रंग बीच में होने से इसे मध्यरंग भी कहा गया है।

दसवीं शती के लगभग विरचित भावप्रकाश में भी नाट्यगृह के तीन प्रकार बताये गये हैं, परन्तु इसमें आचार्य भरत निरूपित विकृष्ट के स्थान पर वृत्त का उल्लेख है। भरत– सम्प्रदाय में वृत्त नाट्यगृह के लिये कहीं अवकाश नहीं है और शारदातनय की दृष्टि से विकृष्ट के स्थान पर वृत्त–स्वीकार कर लिया जाय, तो नाट्यशास्त्र की पूरी परंपरा बदल जाती है। वृत्ताकार रंगशाला नागार्जुनीकोण्डा में मिली है। 12वीं शती के लगभग रचित संगीतरत्नाकर में भी राजप्रासाद का नृत्यशाला वर्णित हैं। उपर्युक्त तत्त्वों के अतिरिक्त इसमें शाला के पुष्पों से सुसज्जित होने तथा स्तंभों के रत्नजटित होने का भी वर्णन मिलता है। नारदकृतम संगीत मकरन्द का चित्र केवल चतुरस्र नाट्यगृह में वर्णित है। जो 96×96 के परिमाण का बताया गया है। इस नाट्यगृह में कामसूत्र में निरुपित 84 बंध चित्रित होने चाहिए। नाट्यशाला के भीतर विभिन्न रत्नों तथा मणियों का काम हो तथा वह पताकाओं, मालाओं और पुष्पों से सजी हो। इसमें चार द्वार होने चाहिए। राजा के बैठने के लिये प्रेक्षागार के मध्य में 12 गज की वर्गाकार एक वेदी बनायी जाती है।

संगीतमकरन्द में नाट्यशाला के नाम से नाट्यगृह का लक्षण इस प्रकार दिया गया है– 86 हाथ की माप के चतुरस्र आकार वाली, 24 स्तंभों तथा नानाचित्रों से भिन्न विकारों से सम्पन्न प्रकार वाली नाट्यशाला होती है। इसमें 84 बन्ध चित्रित हों अनेक

प्रकार के रत्नों, पटवस्त्रों तथा चामरों, पताकतोरणों से यह अलंकृत होती है। इसमें चार द्वार होते हैं। इसके बीच चौबीस हाथ वाली वेदिका होती है। इस नाट्यशाला में राजा के बैठने के लिये एक रम्य सिंहासन भी रहता है।

संगीतशास्त्र के परवर्ती ग्रंथों में संगीतदामोदर में संगीतशाला वर्णित है। यह भरत निरूपित नाट्यगृहों की तुलना में अत्यन्त छोटी – 20 हाथ के परिमाण की होती है। प्रेक्षास्थान, रंगमंच तथा नेपथ्यगृह की स्थिति इसमें वही है, जो आचार्य भरत में, परन्तु यमनिका (जवनिका) की स्थिति नेपथ्यगृह तथा रंगमंच के बीच उल्लिखित है, जो भरत की योजना से भिन्न है। आचार्य भरत के अनुसार इस स्थान पर (नेपथ्यगृह तथा रंगमंच के बीच) दीवार है। यह संभव है कि इस दीवार का स्थान सुविधा की दृष्टि से आगे चल कर जवनिका या पर्दे ने ले लिया हो। कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र में मालविका के नाट्य को अपने नाटक के भीतर प्रस्तुत कराते समय रंगमंचीय व्यवस्था के संकेत किये हैं, उनसे भी यही परिवर्तित स्थिति सूचित होती है।

शिल्पशास्त्रों के ग्रन्थों में भोजकृत 'समराङ्गणसूत्रधार' उल्लेख्य है, यह ग्रन्थ भवन, राजप्रसाद आदि के निर्माण विधि के रूप में अत्यन्त प्रसिद्ध है। जिसमें गांधर्ववेश्म वर्णित है। यह राजप्रासाद का एक भाग होता था, जिसमें प्रेक्षा (नाट्यप्रदर्शन) तथा संगीत के आयोजन होते थे। शिल्पशास्त्र के अन्य ग्रंथ नारदशिल्प में भी तीन प्रकार के नाट्यगृह निरूपित हैं– दैव, गांधर्व तथा राजा। प्रथम मंदिरों में, दूसरा सार्वजनिक स्थानों पर तथा तीसरा राजप्रासाद के अन्तर्गत होता है। प्रथम में दिव्य विषयवस्तु के नाटक प्रस्तुत होते हैं, द्वितीय, तृतीय (क्षात्र) में वीररसप्रधान नाटक नाट्यशास्त्र के अनुरूप नारदशिल्प में भी नाट्यशाला तीन भागों में बाँटने का निर्देश है, जिसके मध्य भाग में रंगमंच होता है। इसके पीछे जवनिका की परिवर्तित स्थिति ही ग्रहण की गयी है। वासवराजकृत शिवतत्त्व रत्नहार में राजा वेंकटप्पा द्वारा इक्केरी में निर्मित वास्तविक रंगशाला का वर्णन है। इस शाला में हाथी दांत तथा चन्दन का अत्यधिक काम वर्णित है। इसके भीतर रत्न जड़े हुए हैं। बाहर चारों ओर उद्यान है। भित्तियों पर चित्रफलक लगाये गये थे। तमिल के सर्वप्राचीन महाकाव्य सीलप्पदिकारम् में भी रंगशाला का वर्णन किया गया है। यह उपर्युक्त रंगशालाओं की तुलना में अत्यन्त छोटी होती है। इसके रंगमंच का परिमाण केवल 8 गुणा, 7 गुणा 11 हाथ बताया गया है। इस मंच को केवल नृत्यप्रदर्शन की दृष्टि से उपयुक्त माना गया है। बाद के अनेक ग्रथकारों में कुम्भ (12वीं शती), विप्रदास, हम्मीर आदि ने भी नाट्यगृह का वर्णन किया है। कुम्भ तथा विप्रदास दोनों आचार्य भरत सम्पत तीन प्रकार– विकृष्ट, चतुरस्र तथा त्र्यस्र स्वीकार करते हुए भी चतुरस्र के दो भेद मानते हैं– दीर्घ तथा सम। विकृष्ट का नाप 108 गुणा 64 हाथ बताया गया है। यह मंदिरों में निर्मित होता है। चतुरस्र दीर्घ 64 गुणा 32 हाथ का होता है। यह राजाओं के लिये होता है। चतुरस्र सम 32×32 हाथ होता है, यह ब्राह्मणों के लिये कहा गया है। त्र्यस्रगृह अन्य वर्गों के लिये होता है। विप्रदास के अनुसार नाट्यगृह के बाहर 5 हाथ का घेरा चारों ओर छोड़कर तीन हाथ ऊँची दीवार परकोटे की भाँति बनायी जानी चाहिये। इस दीवार में नाट्यगृह की परिधि में प्रवेश करने के लिये एक द्वार भी होता है। द्वार पर प्रहरी नियुक्त किया जाना चाहिए। इस प्रकार की दीवार नागार्जुनीकोण्डा के उत्खनन से प्राप्त रंगशाला के चारों ओर बनी हुई मिली है। कुम्भ और विप्रदास ने रंगपीठ तथा रंगशीर्ष दोनों को अलग–अलग माना है। साथ ही दोनों यह भी मानते हैं कि रंगशीर्ष रंगपीठ से डेढ़ हाथ ऊँचा होता है। षड्दारुक की व्याख्या भी दोनों ने रंगशीर्ष के ऊपर निर्मित स्तंभों के ऊपर नीचे की जाने वाली काष्ठरचना के रूप में की है। रंगपीठ के दोनों ओर

निर्मित मत्तवारणी का भी उल्लेख दोनों लेखकों ने किया है। जिसके ऊपर एक उपरिभूमिका (छत) होती है, जिस पर एक कलश स्थापित किया जाता है। विप्रदास ने प्रेक्षागार में आचार्य भरतसम्मत सोपानाकृति पीठक आसनव्यवस्था का भी समर्थन किया है।

हम्मीर ने प्रकृष्ट, चतुरस्र और शस्त– यें तीन प्रकार के नाट्यगृह मान कर इनमें से प्रत्येक के श्रेष्ठ, मध्यम और अधम ये तीन–तीन भेद किये है।

भरत के बाद के ग्रथकारों ने नाट्यगह के नौ उपर्युक्त विवरण के अनुसार भेदोपभेद किये हैं, उनमें संख्या, परिमाण तथा सौन्दर्य विधान की दृष्टि से भरत के विधानों से अंतर है। परन्तु यह अंतर नगण्य तथा महत्वशून्य है। नाट्यगृह के प्रमुख हिस्सों नेपथ्य रंगमंच तथा प्रेक्षागृह की अवस्थिति के बारे ये सभी आचार्यवृन्द आचार्य भरत से सहमत है। साथ ही नाट्यगृह के कुछ ऐसे पक्षों पर भी वे प्रकाश डालते है जिनके सम्बन्ध में आचार्य भरत नाट्यशास्त्र में भी कुछ नहीं कहा है।

परवर्ती नाट्य आचार्यों के द्वारा नाट्यगृह के जो विवरण दिये गये हैं, उनसे संस्कृत रंगपरंपरा की दो अलग–अलग धाराएं स्पष्टतया उभरती हैं। एक राजाप्रासाद का रंगमंच है, जो आकार में छोटा, अधिक अलंकृत तथा बहुमूल्य सामग्री से निर्मित है। यह समाज के सबसे ऊपर के वर्ग– राजा, मंत्री, सामंत तथा राजसभा के पंडितों, कवियों तथा चारणों आदि के लिये था। संगीतरत्नाकर में प्रेक्षागार में बैठने की जो व्यवस्था बतायी गयी है, उसमें दरबार के इन लोगों के लिये कहाँ–कहाँ कौन सा आसन हो यह भी निर्दिष्ट किया गया है। इस व्यवस्था में निस्संदेह राजा का स्थान सर्वोपरि होता है। इस प्रकार की रंगशाला शिल्पतत्त्वरत्नाकर आदि ग्रंथों में उल्लिखित है। दूसरी परंपरा मंदिर के रंगशाला की है, जो आकार में पहली रंगशाला से बड़ी थी। इसका उल्लेख भी हम विष्णुधर्मोत्तरपुराण, नारदशिल्प आदि ग्रथों में प्राप्त होता है।

गोवर्धन के 'रससदनभाण' में नट द्वारा प्रबन्ध की नाट्यप्रस्तुति का विवरण दिया है, जिसमें रंगमंच के बीच तथा नट के पीछे मार्दङ्गिक के रहने का उल्लेख है–

मध्ये दीपज्वलनमधुरे पार्वतः पाणिधस्त्री
चित्रीभूते सरसहृदयैर्भूसुरै र्भासिताग्रे।
पृष्ठे मार्दङ्गिकविलसिते रंगदेशे प्रविष्टः
स्पष्टाकूतं नटयति नटः कोऽपि कश्चित् प्रबन्धम्।

इससे कुतप की जो स्थिति नाट्यशास्त्र में वर्णित है, उसकी सम्पुष्टि होती है। केरल में देवालय की रंगशाला जिसमें कुडियाट्टम् की प्रस्तुतियाँ होती हैं, वे कूत्तम्पलम् कहलाती हैं। भरतसम्मत नाट्यगृह के समान कूत्तम्पलम् का रंगमंच भी तीन भागों में विभाजित रहता है– जवनिकागृह, रंगशीर्ष तथा कुतप का स्थान, जिसे मृदङ्गपद कहा जाता है।

5.3.8.3 ग्रीक परम्परा में नाट्यगृह

ग्रीक रंगमंच की परम्परा में भारतीय नाट्यशास्त्र की भाँति नाट्यशाला के स्थापत्य आकार आदि के सुनिर्धारित मानक नहीं रहे हैं। कुछ तीन प्रकार की रंगशालाओं का प्रचलन इस परम्परा में अलग–अलग समयों में दिखलाई देता है। पाँचवीं श.ई.पू. की

रंगशालाएँ क्लासिकल एथेनियन कहलाती थीं। इनके बाद हेलेनिस्टिक रंगशालाएँ बर्नी, जिनका समय चौथी शती से आरम्भ होता है। इन रंगशालाओं पर सिकन्दर की विजय यात्राओं के परिणाम से पनपी सम्मिश्र संस्कृति का प्रभाव है। अन्तिम चरण में ग्रीक रोमन रंगशालाएं आती है। इन तीनों प्रकार की रंगशालाएं सांस्कृतिक तथा कलात्मक स्तर पर एक दूसरे से बहुत अलग हैं। एथेनियन रंगशाला देवमन्दिर से जुड़ी होती थी तथा इसमें वेदिका रंगमंच के पीछे रहती थी।

प्राचीन ग्रीक रंगशालाएं खुले आसमान में चारों ओर से पहाड़ियों से घिरे स्थान में होती थी। रंगमंच अत्यधिक बड़ा रखा जाता था, क्योंकि कोरस (समूहगान) की मंडली को गायन के साथ–साथ गति के लिये बड़ी जगह की आवश्यकता थी। 465 ई. पू. के आस–पास ऐसी रंगशालाओं का उपयोग होने लगा जो देवालय या राजप्रासाद से जुड़ी होती थीं। रंगमंच तथा प्रेक्षागार इनमें खुले अहाते में ही होता था, परन्तु भित्ति रंगमंच की पृष्ठभूमि के लिये मिल जाती थी तथा इसी भित्ति से सटाकर बाद में एक प्रसाधनकक्ष (ड्रेसिंगरूम) भी बनाया जाने लगा और पुनः इसका उपयोग दृश्यबन्धों के लिये भी होने लगा।

इस प्रकार रंगशालाओं का प्रचलन भारत में भी रहा है, विष्णुधर्मोत्तरपुराण में देवालय को रंगशाला प्रतिपादित है।

प्रेक्षागार के अतिरिक्त वाद्यवृन्द के लिये वृत्ताकार मंच, उसके पीछे चतुर्भुज तथा उसके पीछे दृश्यबन्ध की भित्ति इतना ही स्वरूप एथेनियन रंगशाला का सामने आता है। प्रेक्षागार वाद्यवृन्द के तीन ओर रहता था तथा इसके एक ओर रंगमंच के बीच आने–जाने के लिये वीथी (गलियार) रहता था। इसी का विकसित रूप हेलेनिस्टिक रंगशाला में सामने आया। इसमें रंगमच की ऊँचाई बढ़ाई गयी तथा प्रेक्षागार को अर्धवृत्ताकार से कुछ बढाया गया। रंगमंच के पीछे तीन तक कक्ष बनाये जाने लगे। इनके सामने खम्भे रहते थे। ग्रीकरोमन रंगशालाओं में वाद्यवृन्द वृत्ताकार के स्थान पर अर्धवृत्ताकार से कुछ अधिक रह गया, रंगमंच के अग्रभाग में परिवर्तन हुआ तथा दृश्यबन्ध अधिक विकसित हुआ। इस प्रकार अनेक देशों की सभ्यता, परम्परा में नाट्यमण्डप या नाट्यगृह का वर्णन मिलता है जो पारम्परिक एवं शास्त्रीय नाट्य परम्परा के मध्य मणि के रूप में सामने आता है।

नाट्यगृह चित्रावली

१. भरत के अनुसार नाट्यमण्डपों के विभिन्न रूप

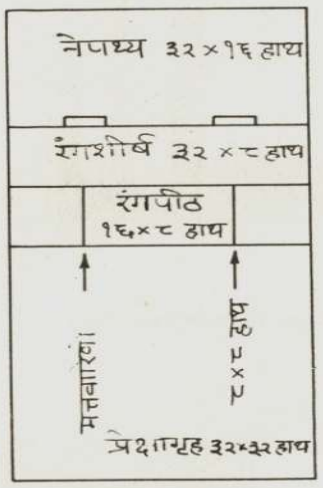

(क) विप्रकृष्ट मध्यनाट्यमण्डप

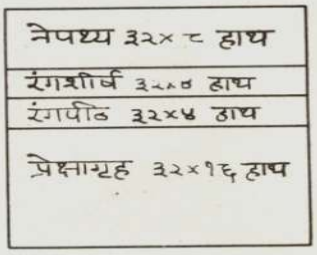

(ख) चतुरस्र नाट्यमण्डप

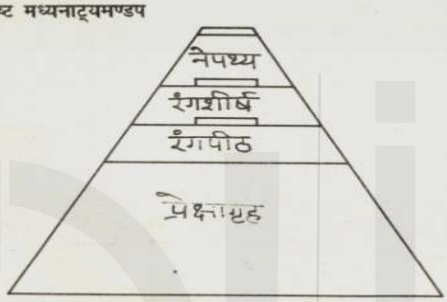

(ग) त्रिकोण नाट्यमण्डप
(माप १ इंच = ८० हाथ)

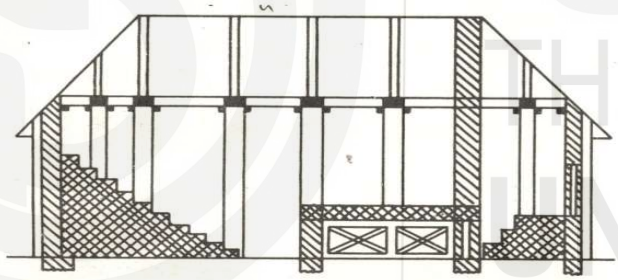

२. अभिनवगुप्त के अनुसार सोपानाकृतपीठ तथा उत्तानसुप्तपुरुषवत् प्रेक्षागृह

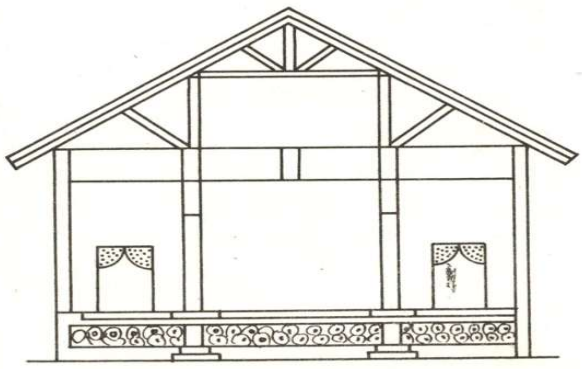

३. श्री सुब्बाराव के अनुसार मत्तवारणी तथा षड्दारुक

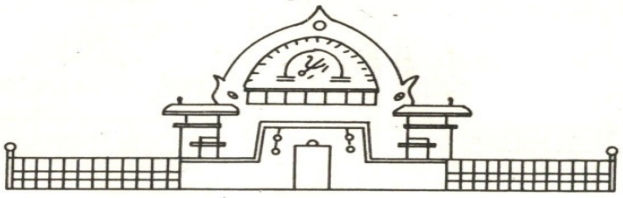

४. सम्मुख दृश्य

५. पृष्ठ दृश्य

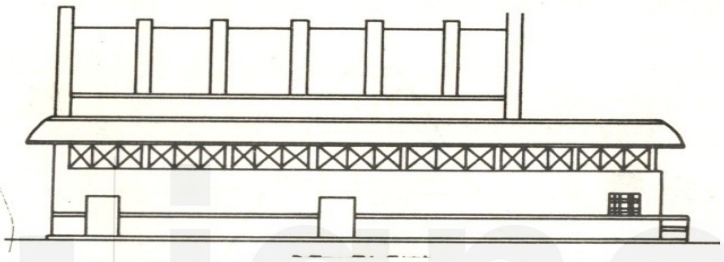

६. पार्श्व दृश्य

७. सुब्बाराव द्वारा भरत-कल्पित नाट्यमण्डपों की रूपरेखा

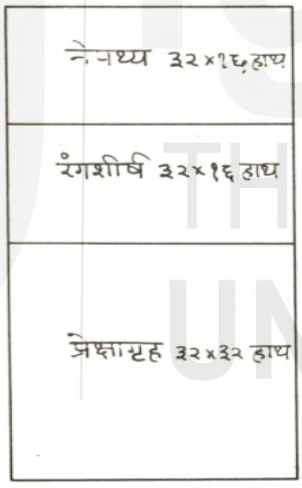

(क) विप्रकृष्ट मध्यनाट्यमण्डप

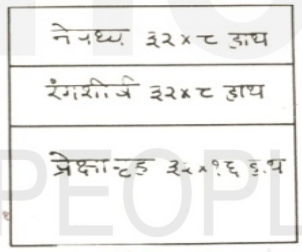

(ख) चतुरस्त्र नाट्यमण्डप

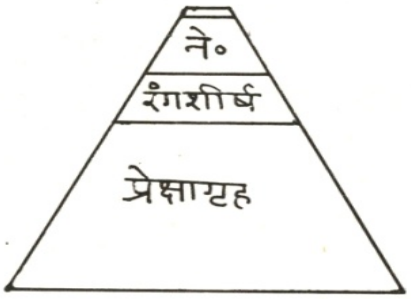

(ग) त्रिकोण नाट्यमण्डप

८. आचार्य भट्टतौत के अनुसार द्विभूमि नाट्यमण्डप

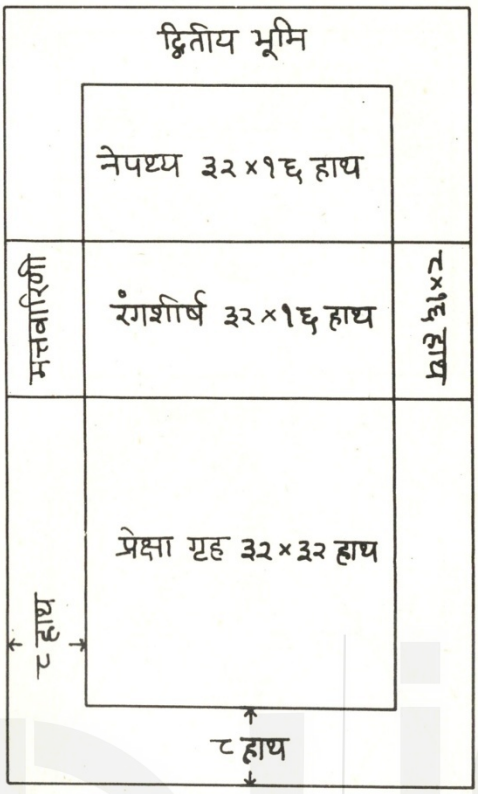

९. डॉ. मनमोहन घोष के अनुसार नाट्यगृह
(३२ x ३२ हाथ का रेखाचित्र)

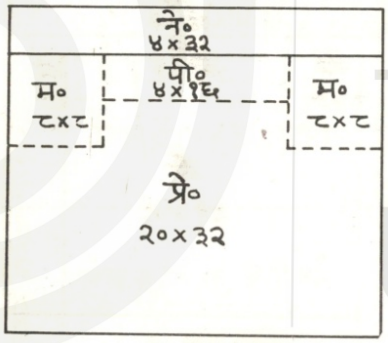

(क) चतुरस्त्र (वर्गाकार)

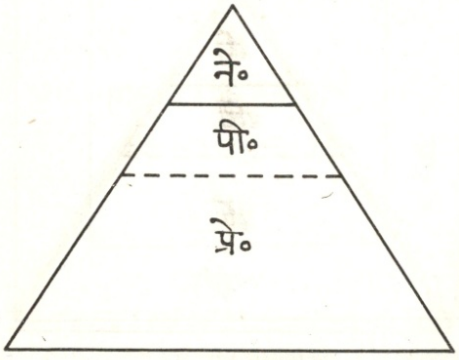

(ख) त्र्यस्त्र (त्रिभुजाकार)
(प्रत्येक रेखा ३२ हाथ का रेखाचित्र)
पैमाना - १ सेण्टीमीटर = ४ हाथ
संकेत - ने. - नेपथ्यगृह, पी. - रंगपीठ म. मत्तवारिणी, प्रे. - प्रेक्षकोपवेश

१०. श्री सुब्बाराव के अनुसार विकृष्ट (आयताकार) नाट्यगृह
(६४ x ३२ हाथ का रेखाचित्र)

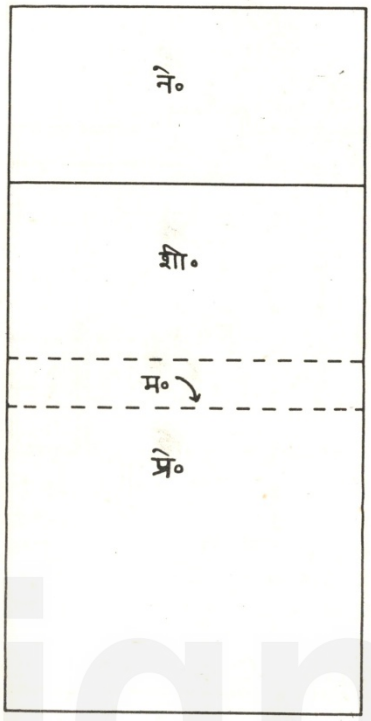

पैमाना - १ सेण्टीमीटर = ४ हाथ
संकेत - ने. - नेपथ्यगृह, शी. - रंगशीर्ष म. मत्तवारिणी, प्रे. - प्रेक्षकोपवेश

११. नागार्जुनीकोण्डा की नाट्यशाला

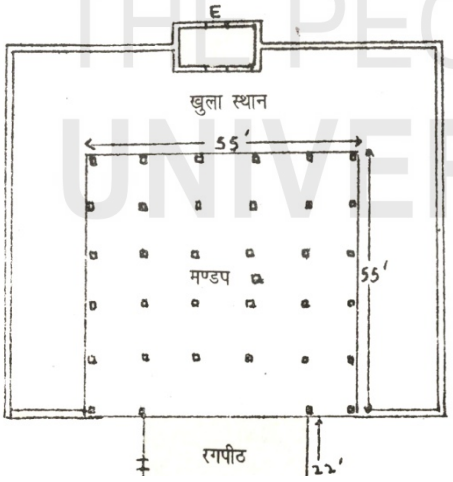

5.4 सारांश

यह इकाई रंगमंच निर्माण विधि के रूप में महत्त्वपूर्ण है। जिसमें मुख्य रूप से नाट्यमण्डप के निर्माण की विधि बतलायी गयी है। वस्तुतः नाट्यानुशासन के लिए नाट्यमण्डप का निर्माण आवश्यक होता है क्योंकि नाट्यमण्डप से ही नाट्य के अनुकूल वातावरण का निर्माण होता है। इसलिए नाट्यमण्डप व्यवस्थित और असुविधा रहित होना चाहिए। जिसके लिए नाट्याचार्यों द्वारा काष्ठ विधि, भित्तिकर्म, सुधाकर्म,

नेपथ्यगृह, उपवेशन व्यवस्था, ध्वनि एवं प्रकाश आदि की समुचित व्यवस्था हेतु निर्देश दिया गया है। उन्हीं से सम्बन्धित विषयों का यहाँ प्रतिपादन किया गया है।

5.5 शब्दावली

काष्ठविधि – लकड़ी से सम्बन्धित कार्य को काष्ठ विधि कहा जाता है।

भित्तिकर्म – दिवाल निर्माण ही भित्तिकर्म है।

सुधाकर्म – नाट्यमण्डप के चूना इत्यादि से कलई करना सुधाकर्म कहलाता है।

नेपथ्यगृह – रंगमंच पिछला भाग जहाँ भेष विन्यास इत्यादि का कार्य होता है उसे नेपथ्यगृह कहा जाता है।

उपवेशन – इसका अर्थ बैठना होता है यानि जहाँ प्रेक्षक बैठते हैं उसे उपवेशन कहा जाता है।

यवनिका – पूर्वरंग आदि के रूप में गीत–गायन आदि का प्रयोग यवनिका से संचालित होता है।

5.4 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, सं. डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2015
2. नाट्यशास्त्रविश्वकोश, राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1999
3. भरत और भारतीय नाट्यकला, सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2009
4. श्रीविष्णुधर्मोत्तरमहापुराण, टीकाकार आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2016
5. नाट्यशास्त्रीय मूलतत्त्वों की विकास परम्परा, सं. कुसुम भूरिया दत्ता, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2012
6. नाट्यानुशासन, रेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदाससंस्कृतसंस्थानम्, वाराणसी, 2008
7. अग्निपुराण का नाट्यदर्शन, डॉ. संजय कुमार, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2018
8. नाट्यम् अंक 80, (नाट्यशास्त्र विशेषांक), नाट्यपरिषद् संस्कृत विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मार्च–2017
9. संस्कृत हिन्दी कोश, वामनशिवरामआप्टे, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2016

5.5 बोध प्रश्न

1. रंगमंच के भित्तिकर्म पर प्रकाश डालिए।
2. सुधाकर्म से आप क्या समझते हैं?
3. नाट्यमण्डप के साज–सज्जा पर प्रकाश डालिए।
4. आचार्य भरत के अनुसार विकृष्ट मध्यम रंगमंच की श्रेष्ठता का वर्णन कीजिए।
5. रंगमंच के अन्य परम्परा का वर्णन कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY